www.ijarp.com ISSN 2456-9992 Page: 01-06

International Journal Advanced Research Publications

Review Article
Volume: 02
Issue: 09

पितृसत्तात्मक सरंचना और आर्थिक पराधीनता के संदर्भ में कृष्णा सोबती के उपन्यास 'डार से बिछुड़ी हुई' की नायिका 'पाशो' का अस्तित्व-संघर्ष

***Monika Singh**

India.

Article Received: 29 July 2026, Article Revised: 19 August 2026, Published on: 09 September 2026

***Corresponding Author: Monika Singh**
India.

Doi: https://doi-doi.org/101555/ijarp.8395

शोध संक्षेप : एक लेखक का दायित्व केवल मनोरंजन करना नहीं, अपितु समाज के यथार्थ को ईमानदारी से प्रस्तुत करना है। हिंदी साहित्य में एक लेखिका के रूप में कृष्णा सोबती का स्थान अत्यंत विशिष्ट है, क्योंकि उन्होंने अपने कथा-साहित्य में स्त्री के अनुभव-जगत को केवल भावनात्मक या करुणात्मक स्तर तक सीमित न रखकर उसे व्यापक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भों में विश्लेषित किया है। उनका लेखन यह सिद्ध करता है कि एक सच्चा लेखक समाज का सजग द्रष्टा और संवेदनशील मार्गदर्शक होता है। सरल भाषा और सशक्त अभिव्यक्ति के माध्यम से वे पाठकों को सोचने के लिए प्रेरित करती हैं। उनका उपन्यास **'डार से बिछुड़ी'** नारी-विमर्श की दृष्टि से एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है, जिसमें स्त्री-अस्मिता, पितृसत्तात्मक नियंत्रण, सामाजिक नैतिकता के दोहरे मानदंड और आर्थिक निर्भरता के प्रश्नों को गहन संवेदनात्मक और यथार्थपरक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। इस शोध-पत्र में उपन्यास की नायिका 'पाशो' के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री के संघर्ष, उसकी आत्मनिर्भरता, संवेदनशीलता एवं उसकी आर्थिक पराधीनता का विश्लेषण किया गया है।

मूल शब्द : अस्तित्व, संघर्ष, आत्मनिर्भरता, पितृसत्ता, शोषित।

शोध प्रस्तावना : हिंदी साहित्य में कृष्णा सोबती एक अत्यंत प्रतिष्ठित और सम्मानित हस्ताक्षर हैं। आधुनिक हिंदी कथा-साहित्य में वे एक सशक्त, सजग और निर्भीक कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। अपने दीर्घ एवं रचनात्मक साहित्यिक जीवन में उन्होंने उपन्यासों, कहानियों, संस्मरणों और रिपोर्ताजों के माध्यम से हिंदी गद्य को अत्यधिक समृद्ध किया है। **'डार से बिछुड़ी', 'मित्रो मरजानी', 'जिंदगीनामा' और 'दिलो-दानिश'** जैसी उनकी कालजयी कृतियाँ इस बात का प्रमाण हैं। सोबती जी का साहित्य स्वतंत्र भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का एक जीवंत दस्तावेज है। विशेष रूप से स्त्री-विमर्श के संदर्भ में उनकी लेखनी अत्यंत प्रखर रही है। उन्होंने स्त्री की

स्वायत्तता, उसकी स्वतंत्रता और उसके अधिकारों की सदैव सशक्त वकालत की है। उनके कथा-संसार में शोषित-पीड़ित महिलाओं से लेकर विद्रोही और स्वच्छंद चेतना वाली स्त्रियाँ तक पूरी संवेदना के साथ चित्रित हुई हैं। उनकी ये स्त्री पात्र परंपरागत रूढ़ियों को चुनौती देते हुए अपने जीवन का रास्ता स्वयं तय करती हैं।

उनका उपन्यास 'डार से बिछुड़ी' केवल पाशो नामक नायिका की जीवन-गाथा नहीं है, बल्कि उस समूची पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना का प्रतिनिधि आख्यान है, जहाँ स्त्री की पहचान उसके स्वायत्त व्यक्तित्व के आधार पर नहीं, बल्कि परिवार, जाति, इतिहास एवं पुरुष-प्रधान सामाजिक धारणाओं के आधार पर निर्धारित की जाती है। यहाँ पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री के अस्तित्व, उसकी स्वतंत्रता और उसके निर्णयों पर नियंत्रण स्थापित करती है तथा उसे एक स्वतंत्र इकाई के रूप में नहीं, बल्कि संबंधों और परंपराओं के अधीन परिभाषित करती है। **"डार"** यहाँ केवल पेड़ की शाखा नहीं, बल्कि परिवार, परंपरा और सामाजिक संरचना का प्रतीक है। **"बिछुड़ी"** होना उस संरचना से अलगाव और संघर्ष का द्योतक है। पितृसत्ता एक ऐसी सामाजिक संरचना है, जो स्त्री को पुरुष के अधीन अथवा मात्र उसके सहायक के रूप में देखने की प्रवृत्ति को पोषित करती है। इस संदर्भ में कमला भसीन का कथन अत्यंत सार्थक है, वे लिखती हैं – "पितृसत्ता, शक्ति-संबंधों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से पुरुष स्त्री पर अपना वर्चस्व स्थापित करता है।"[1] अर्थात् पितृसत्तात्मक व्यवस्था केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सुदृढ़ सामाजिक एवं संस्थागत ढांचा है, जिसमें पुरुष सत्ता के केंद्र में होते हैं और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा पारिवारिक निर्णयों में उनकी प्रमुख भूमिका होती है। यह व्यवस्था पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है और समाज की संरचना में गहराई से अंतर्निहित है। लेखिका का उपन्यास इसी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का शिकार हुई नारी के संघर्ष की गाथा है। प्रस्तुत कृति की कथावस्तु एक ऐसी स्त्री पाशो के जीवन के इर्द-गिर्द केंद्रित है, जो अपने पारिवारिक और सामाजिक परिवेश से अलग होकर अपने अस्तित्व की तलाश में भटकती है। पाशो की माँ द्वारा विधवा होने के पश्चात् किया गया अंतर्जातीय विवाह, जो स्वयं में एक स्वतंत्र निर्णय था, पाशो के लिए सामाजिक अपराध का रूप ले लेता है। उसे अपनी माँ के अंतर्जातीय विवाह का दंड भुगतना पड़ता है, परिणामस्वरूप उसके ऊपर कठोर सामाजिक निगरानी और नैतिक नियंत्रण स्थापित कर दिया जाता है। उसे 'डार से बिछुड़ी' कहकर संबोधित करना वस्तुतः उसके व्यक्तित्व के निषेध और सामाजिक लांछन का प्रतीक बन जाता है। यहाँ 'डार' केवल पारिवारिक जड़ों का संकेत ही नहीं, बल्कि उस सामाजिक संरचना का बोधक है, जिससे विचलन को अपराध माना जाता है। पाशो का जीवन आरंभ से ही अपमान, संदेह और दमन के वातावरण में विकसित होता है, जहाँ उसके अस्तित्व को निरंतर नकारा जाता है। उपन्यास में पाशो अपनी नानी और मामा-मामी के साथ रहती है । जहाँ प्रतिदिन उसे उनके द्वारा प्रताड़ित किया

जाता है । उसका जीवन कठोर पाबंदियों में बंधा हुआ था । गाली-गलौच मार-पीट तो उसके साथ आम बात थी । उसका पूरा परिवार उसे 'करमजली' कहता था । "पीढ़ी ले बर्तन-भांडे में लगती तो मामियों की आवाज़ गूंजती-- "नखरे तो देखो लाडो के ! पीढ़ी ले बर्तन मलने बैठी है । अरी ! ओ बुरों की पीढ़ी पर बैठती है भले घरों की बहू- बेटियां ।"[2] लेखिका ने स्पष्ट किया है कि यह स्थिति स्त्री के अस्तित्व संकट को उजागर करती है, जहाँ वह स्वयं के बजाय दूसरों की दृष्टि से परिभाषित होती है। एक दिन पड़ोस के लड़के करीमू के हाथ में पाशो का रुमाल मिल जाता है। केवल इसी आधार पर पाशो के मामा उस पर शक करने लगते हैं। बिना सच्चाई जाने वे उसकी बुरी तरह पिटाई करते हैं। इतना ही नहीं, वे उसे मौहरा (ज़हर) देकर मारने का भी प्रयास करते हैं। "मामू सीढ़ियों के पास तक जा फिर लौट आए । तंदूर के पास पड़े लकड़ियों के ढेर से एक छड़ उठा फिर मारने लगे । "तेरी ऐसी करतूतें !" तड़पी रोई धोई पर मामू तो थमे नहीं । लहू बहता देख ऐसी डरी कि घिग्गी बंध गई । मामू का पैर पकड़ कर सिर पटकने लगी—और ना मारो मामू, मैंने कुछ नहीं किया..."[3] नानी सांस रोके घड़ी भर मुझे ताकती रही, फिर ज़वाब न पा माथे पर हाथ धर कर बोली – किन पापों का फल मुझे इस जनम में मिलना था । बहू इसे मौहरा दो मौहरा । ऐसी सोए कि जागे न ।"[4] पाशो के जीवन में परिवार के भीतर होने वाली हिंसा पितृसत्तात्मक संरचना की क्रूरता को स्पष्ट रूप से उजागर करती है। मामाओं द्वारा उसके साथ किया गया दुर्व्यवहार, गाली-गलौच और शारीरिक हिंसा यह दर्शाते हैं कि स्त्री के अस्तित्व का मूल्य इस व्यवस्था में अत्यंत न्यून है। मात्र संदेह के आधार पर उसकी पिटाई और उसे 'मौहरा' देकर समाप्त करने की बात इस बात का संकेत है कि स्त्री के जीवन और उसकी गरिमा का कोई स्वतंत्र महत्त्व नहीं है। लेखिका ने यह भी स्पष्ट किया है कि पुरुष और स्त्री के लिए समाज में दोहरा मापदंड है । पुरुष के लिए स्वतंत्रता स्वीकार्य किन्तु स्त्री के लिए वही स्वतंत्रता अपराध बन जाती है । यह दोहरा मापदंड यह दर्शाता है कि नैतिकता भी सत्ता के अनुसार निर्मित होती है। पितृसत्तात्मक समाज अपनी सुविधा के अनुसार नियम बनाता है और स्त्री पर लागू करता है। पाशो अपने मामा–मामी के घर में स्वयं को असुरक्षित अनुभव करती है, वह वहाँ से निकल जाने का निर्णय लेती है। किन्तु उसका यह कदम उसके जीवन के लिए अभिशाप सिद्ध होता है और यहीं से उसके जीवन का कठिन तथा दारुण चरण प्रारम्भ हो जाता है। पाशो की माँ का पति शेख एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति था | वह उसका विवाह अपने हमउम्र मित्र दीवान से करवा देता है। पाशो इस संबंध को अपनी इच्छा से नहीं, अपितु परिस्थितियों के दबाव में स्वीकार करती है। वह अपने मन को समझाते हुए दीवान जी को अपनाने और इस नए जीवन के साथ स्वयं को सामंजस्य में लाने का प्रयास करती है। वह कहती है—"यही मेरे सर की सरदारी है । यही मेरे मांग का सुहाग ।"[5] यहाँ विवाह प्रेम या समानता का संबंध न होकर एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में सामने आता है, जिसमें स्त्री की भूमिका केवल अनुकूलन और समर्पण की होती है। यद्यपि दीवान उसे

प्रेम करता था किन्तु उसकी जल्दी ही मृत्यु हो जाती है । उसकी मृत्यु के पश्चात् दीवान के दूर के रिश्ते का भाई बरकत उसका शोषण करना अपना एकाधिकार समझता है । वह उसे अपनी सम्पत्ति समझते हुए कहता है " तेरा तो नाम, चाम सब मेरा ही है पगली और ऐसा कह कर उसका पल्ला खींच लेता है ।"[6] यह कथन स्त्री के पूर्ण वस्तुकरण का सशक्त उदाहरण है, जहाँ उसकी देह, उसकी पहचान और उसका अस्तित्व सभी पर पुरुष का स्वामित्व स्थापित कर दिया जाता है। इस स्थिति को और अधिक विडंबनापूर्ण बनाती है बरकत की माँ की प्रतिक्रिया, वह कहती है "पली पलाई है री मालन, बेटे को खुश करना सीख ।"[7] बरकते की माँ का व्यवहार यह स्पष्ट करता है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था केवल पुरुषों के कारण ही नहीं, बल्कि स्त्रियों के सहयोग से भी बनी रहती है। एक स्त्री होते हुए भी वह पाशो के दुख को समझने के बजाय उसे सहने और पुरुष को प्रसन्न रखने की सीख देती है। यह स्थिति स्त्री की अस्मिता के दमन और उसे वस्तु मानने वाली मानसिकता को स्पष्ट रूप से उजागर करती है। बरकत दीवान पाशो का भरपूर शोषण कर उसे अपना ऋण चुकाने हेतु बेच देता है । जिस घर में पाशो को बेचा जाता है वहां का मुखिया पाशो से कहता है – "भागभरी, यह घर बाहर सम्भाल और द्रौपदी बन कर सेवा कर मेरी और मेरे बेटों की । 'खैर मना इस अच्छे घर पहुँच गई वरना बरकत कसाई एक बार नहीं सौ बार तुझे बेच खाता ।' 'भागभरी, गहरी बात कहता हूँ । सीधी राह चलेगी । भला ! तीन-तीन पहरू हैं घर में, भूलकर भी डयोढ़ी से पाँव बाहर मत रखना ! समझ रख बीवी । बरकतें को घड़ा भर मोहरें दी हैं,अब तू इस घर की दात्त !"[8] पाशो का बार-बार बेचा जाना और एक घर से दूसरे घर भेजा जाना स्त्री के वस्तुकरण की पराकाष्ठा को व्यक्त करता है। जिस घर में उसे बेचा जाता है, वहाँ के मुखिया द्वारा पाशो के लिए 'द्रौपदी' का सम्बोधन वास्तव में पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से स्त्री-शोषण को वैध ठहराने की मानसिकता को उजागर करता है। द्रौपदी का संदर्भ यहाँ आदर्श नारीत्व का नहीं, बल्कि बहु-पुरुषीय उपभोग की एक विकृत व्याख्या का प्रतीक बन जाता है। स्त्री को दात्त कहना यह स्पष्ट करता है कि आर्थिक लेन-देन के स्तर पर स्त्री को एक वस्तु के रूप में स्थापित कर दिया गया है, जिसका अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उपन्यास का एक अत्यंत मार्मिक पक्ष पाशो की मानसिक स्थिति का सूक्ष्म चित्रण है। मंझले की मृत्यु के पश्चात् उसका यह कथन -- "जहाँ पाँव रखती हूँ वहीं बुरा बहता जाता है। क्या पता था जिस घर शरण आउंगी उस घर दुर्दशा भी देख लूंगी ।"[9] उसकी गहरी आत्मग्लानि और टूटते आत्मविश्वास को व्यक्त करता है। वह जीवन की प्रत्येक विपरीत घटना के लिए स्वयं को ही दोषी मानने लगती है। यह आत्मग्लानि उसकी व्यक्तिगत दुर्बलता नहीं, बल्कि उस पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना का परिणाम है, जिसने उसे निरंतर दोषी ठहराया और हीनता का बोध कराया। बार-बार के तिरस्कार और अपमान ने उसके भीतर यह विश्वास स्थापित कर दिया है कि उसके अस्तित्व में ही कोई त्रुटि है। परिणामस्वरूप, वह परिस्थितियों का विश्लेषण करने के बजाय स्वयं को ही दोष देने लगती है।

इस प्रकार, लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि पितृसत्ता केवल बाहरी नियंत्रण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि वह स्त्री की चेतना को इस प्रकार निर्मित कर देती है कि वह स्वयं अपने अस्तित्व को दोषपूर्ण मानने लगती है। यह मानसिक दमन स्त्री की अस्मिता और आत्मविश्वास को भीतर से क्षीण कर देता है। लेखक अरविन्द जैन का कथन पाशो की इस स्थिति को सम्पूर्णता से व्यक्त करता है वह लिखते हैं कि -- "सामन्ती व्यवस्था में नारी एक वस्तु है, एक सम्पत्ति है, सम्भोग और संतान की इच्छा पूरी करने वाली मादा है ।"[10] पाशो को उसके स्त्री होने की यही सज़ा मिलती है कि उसे बार-बार एक वस्तु की तरह देखा और बरता जाता है। फिर भी, इस अमानवीय व्यवहार के बीच उसके भीतर की ममता और संवेदनशीलता अक्षुण्ण बनी रहती है। अपने क्रय-विक्रय की पीड़ा को भुलाकर वह लाला की बीमारी में उसकी निष्ठापूर्वक सेवा करती है और उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना करती हुई कहती है कि "मैं तो पराये घर पर हूँ, पर इस घर के करता-धर्ता की यह दशा ! हे जानी जान, ऐसे हाल किसी के न हों, कोई यूँ अकेला पड़ा अपने अंत की बाट न जोहे... ।"[11] उसकी सेवा-भावना से प्रभावित होकर लाला कृतज्ञता के साथ कहता है—"दीवानों की, मैं जी भर तृप्त हुआ, रब्ब तुझे खूब सुख-चैन दे।"[12] कृष्णा सोबती इस माध्यम से यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री का वास्तविक स्वरूप उसकी ममता, करुणा और संवेदनशीलता में निहित है, जिसे कोई भी दमनकारी सामाजिक व्यवस्था पूर्णतः नष्ट नहीं कर सकती। साथ ही, यह प्रसंग उस गहरी विडंबना को भी उजागर करता है कि जिस स्त्री को समाज अधिकारों से वंचित रखता है, वही स्त्री सबसे अधिक मानवीयता, सहानुभूति और सेवा का परिचय देती है।

निष्कर्ष :-- उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कृष्णा सोबती का उपन्यास **'डार से बिछुड़ी'** स्त्री-अस्मिता और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंतर्संबंधों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उजागर करता है। पाशो का अस्तित्व आरंभ से ही संदेह, भय और दमन की छाया में विकसित होता है। उसे 'डार से बिछुड़ी' कहकर पुकारा जाना उसके सामाजिक बहिष्कार और अस्मिता के निषेध का प्रतीक बन जाता है। यह बहिष्कार सिद्ध करता है कि स्त्री की पहचान उसके अस्तित्व से नहीं, अपितु सामाजिक धारणाओं और पुरुष-नियंत्रित संरचनाओं से निर्मित की जाती है। निरंतर शोषण,अपमान और नियंत्रण के परिणामस्वरूप स्त्री न केवल सामाजिक, बल्कि मानसिक स्तर पर भी पराधीन हो जाती है और अंततः अपने ही अस्तित्व को दोषपूर्ण मानने लगती है। इन सभी के बावजूद, पाशो की करुणा और संवेदनशीलता यह प्रमाणित करती है कि स्त्री की मानवीयता दमन के बीच भी अक्षुण्ण रहती है। अतः यह कृति इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि स्त्री की वास्तविक मुक्ति उसकी आर्थिक, मानसिक और वैचारिक आत्मनिर्भरता में निहित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ० जोशी गोपा, भारत में स्त्री असमानता : एक विमर्श,(प्रथम संस्करण) 2006, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ० सं० 45
2. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 18
3. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 23
4. 4.) कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 24
5. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० सं० 47
6. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 75
7. कृष्णा सोबती ,डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,, पृ० सं० 78
8. 8.) कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 82
9. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 111
10. जैन अरविन्द, औरत होने की सज़ा, (प्रथम संस्करण) 1996, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० सं० 20
11. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० सं० 91
12. कृष्णा सोबती, डार से बिछुड़ी हुई, (ग्यारहवां संस्करण)1984, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,, पृ० सं० 91